Hindi

Explore–Journal of Research
ISSN 2278 – 0297 **(Print)**
ISSN 2278 – 6414 **(Online)**
UGC Approved List of Journals No. - 64404
© Patna Women's College, Patna, India
http://www.patnawomenscollege.in/journal

प्रेमचंद के कथा साहित्य में वृद्ध का विमर्श

• मेधा भारती • सलोनी प्रिया • निर्मला दिग्गी
• कुमारी मनीषा

Received : November 2017
Accepted : March 2018
Corresponding Author: Kumari Manisha

Abstract : प्रेमचंद एक युग प्रवर्तक रचनाकार थे जो अपनी रचनाओं के द्वारा जनता के हृदय को गहराई से स्पर्श करते हैं। प्रेमचंद का साहित्य बड़ा ही व्यापक है। भूमंडलीकरण और वैश्वीकरण के इस युग में हमारे नैतिक मूल्यों का क्षरण बड़ी ही तीव्र गति से होता दिख रहा है। आज समाज में बुजुर्गों की जो दयनीय स्थिति हो गई है इस भयावह स्थिति से त्राण पाने के लिए हमें इस समस्या की जड़ों तक पहुँचना होगा। युगद्रष्टा कथाकार प्रेमचंद ने इस आने वाले समय की झाँकी अपनी कहानियों में पहले ही प्रस्तुत कर दी है। अतएव, आज यदि हमें समाज का नवनिर्माण करना है तो प्रेमचंद द्वारा संकेतित समस्याओं को जड़ से मिटाना होगा। हमने साहित्य में वृद्ध-विमर्श की प्रासंगिकता को लेकर परियोजना-कार्य तैयार किया है।

संकेत शब्द : वृद्ध विमर्श, वृद्धमनोविज्ञान, वृद्ध अवहेलना एवं सामाजिक परिस्थितियाँ, आत्ममंथन, कर्तव्यबोध।

मेधा भारती
बी० ए०-तृतीय वर्ष (2015-2018), हिन्दी (प्रतिष्ठा),
पटना वीमेंस कॉलेज, पटना विश्वविद्यालय, पटना, बिहार, भारत

सलोनी प्रिया
बी० ए०-तृतीय वर्ष (2015-2018), हिन्दी (प्रतिष्ठा),
पटना वीमेंस कॉलेज, पटना विश्वविद्यालय, पटना, बिहार, भारत

निर्मला दिग्गी
बी० ए०-तृतीय वर्ष (2015-2018), हिन्दी (प्रतिष्ठा),
पटना वीमेंस कॉलेज, पटना विश्वविद्यालय, पटना, बिहार, भारत

कुमारी मनीषा
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, पटना वीमेंस कॉलेज,
बेली रोड, पटना – 800 001, बिहार, भारत
E-mail : drmanishavikash01@gmail.com

भूमिका :

"बूढ़ी काकी में जिह्वा-स्वाद के सिवा और कोई चेष्टा शेष न थी और न अपने कष्टों की ओर आकर्षित करने का रोने के अतिरिक्त दूसरा कोई सहारा ही। समस्त इन्द्रियां, नेत्र, हाथ और पैर जवाब दे चुके थे।" (प्रेमचंद, मानसरोवर, भाग-8, 99)

"बुढ़िया न जाने कब तक जिएगी। दो-तीन बीघे ऊसर क्या दे दिया, मानो मोल ले लिया है! बघारी दाल के बिना रोटियां नहीं उतरतीं! जितना रुपया इस पेट में झोंक चुके, उतने से तो अब तक गांव मोल ले लेते।" (प्रेमचंद, मानसरोवर, भाग-7, 98)

"अम्माँ, तुम बरबस बात बढ़ाती हो। जिन रुपयों को तुम अपना समझती हो, वह तुम्हारे नहीं हैं, हमारे हैं। तुम हमारी अनुमति के बिना उनमें से कुछ नहीं खर्च कर सकतीं।" (प्रेमचंद, मानसरोवर, भाग-1, 55)

"बेटा! तुम्हारे साथ मेरा निर्वाह न होगा। तुम मुझे रुपये दे दिया करो, मैं अपना खा-पका लूंगी।" (प्रेमचंद, मानसरोवर, भाग-7, 99)

"माँ तुम मुझे धोखा देकर यूँ चली जाओगी। मेरा बनता काम बिगाड़ोगी? जानती नहीं, साहब खुश होगा, तो मुझे तरक्की मिलेगी।" (साहनी,2003:22)।

"'बूढ़े आदमी है' अमर भुनभुनाया, 'चुपचाप पड़े रहें। हर चीज में दखल क्यों देते हैं?'" (प्रियंवदा, 111)

"हाय! कितनी निर्दय हूँ मैं। जिसकी संपत्ति से मुझे दो सौ रुपये वार्षिक आय हो रही है, उसकी यह दुर्गति! और मेरे कारण! हे दयामय भगवान! मुझसे भारी चूक हुई, मुझे क्षमा करो। आज मेरे बेटे का तिलक था सैकड़ों मनुष्यों ने भोजन पाया मैं उनके इशारे की दासी बनी रही। अपने नाम के लिए सैकड़ों रुपये व्यय कर दिये; परन्तु जिसकी बदौलत हजारों रुपये खाये, उसे इस उत्सव में भी भरपेट भोजन न दे सकी? केवल इसी कारण तो, वह वृद्धा असहाय है!" (प्रेमचंद, **मानसरोवर**, भाग-8, 104-105)

"भारत के सबसे शिक्षित और आधुनिक राज्य केरल में भी वृद्ध लोगों की स्थिति इतनी दयनीय हो गई है कि वहाँ के उच्च न्यायालय ने उनके लिए कष्टहीन आत्महत्या को कानूनी मान्यता देने की अपील की गई है"(सिन्हा, 2007:144-145)।

"साहित्य मस्तिष्क की वस्तु नहीं, हृदय की वस्तु है। जहाँ ज्ञान और उपदेश असफल होता है, वहाँ साहित्य बाजी ले जाता है" (प्रेमचंद, 93)।

"मनुष्य ने जगत् में जो कुछ सत्य और सुन्दर पाया है और पा रहा है, उसी को साहित्य कहते हैं और कहानी भी साहित्य का एक भाग है।" (प्रेमचंद, **कुछ विचार**, 31) प्रेमचंद ने भारत के आम आदमी की समस्याओं को अपनी कहानियों में चित्रित किया है।

प्रेमचंद का साहित्य बड़ा ही व्यापक है। देश का कोई ऐसा धर्म, जाति, वर्ण, वर्ग आदि ऐसा नहीं है जो उनके साहित्य में न हो। जीवन की कठोर वास्तविकता का चित्रण प्रेमचंद के साहित्य में मिलता है। प्रेमचंद के अमूल्य योगदान से आज कहानी विधा, आदर्श व शिल्प की दृष्टि से नये-नये आयामों को आत्मसात करती हुई विकास की मंजिल तक पहुँचने में सक्षम है।

आधुनिकता के इस युग में एक ओर हम पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित हो अपनी रूढ़िवादी विचारधारा की परिधि से निकलकर विकासोन्मुख तो हो रहे हैं किन्तु वहीं दूसरी ओर इन सब के बीच उन मूल्यों एवं संस्कारों को बिसूरते जा रहें, जो हमारे चरित्र-निर्माण में सहायक हैं। प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में इस समस्या को बीज रूप में दिखाया है। जिस भारतवर्ष का अतीत स्वर्णिम है तथा जहाँ की संस्कृति में **'मातृदेवो भवः पितृदेवो भवः'** जैसी अवधारणा सर्वोपरि रही है, उस भारतवर्ष में आज बुजुर्गों की दयनीय एवं असम्मानीय स्थिति हो गयी है; जो आज की युवा पीढ़ी के लिए चिन्तनीय एवं विचारणीय विषय है। जिस वृक्ष की जड़ सदैव जमीन पर टिकी रहती है और उसकी टहनियाँ स्वच्छंद आकाश में विचरण करती हैं किन्तु जड़ के बिना इन टहनियों का कोई अस्तित्व नहीं होता है। इसी तरह बुजुर्ग भी हमारी नींव होते हैं, जो सभ्यता एवं संस्कृति से जुड़े होते हैं एवं हमारी उन्नति के आधार बनते हैं। इनके बिना भावी पीढ़ी में सचरित्रता की कल्पना नहीं की जा सकती है।

प्रेमचंद की कहानियाँ वृद्धों की स्थिति से रू-ब-रू कराती हैं। यहाँ प्रेमचंद की तीन कहानियों एवं अन्य कथाकारों की तीन कहानियों को समावेशित किया गया है, जो समाज की उस व्यवस्था से पर्दा उठाती हैं जिसमें लोग अपनी स्वार्थपरता के लिए वृद्धों की अवहेलना करते हैं। युवावस्था, वृद्धावस्था की परिस्थितियों से अनभिज्ञ होती है। अतः प्रेमचंद अपनी इन कहानियों के माध्यम से वृद्धों की तत्कालीन स्थितियों को दर्शाकर युवा पीढ़ी को अवगत कराना चाहते हैं कि युवा चाहे उन्हें लाख बेकार समझे बुजुर्ग हमेशा हमेशा उनका साथ देते हैं तथा उनका मार्गदर्शन करना चाहते हैं।

वृद्धावस्था, बाल्यावस्था का ही पुनरागमन होता है। इन अवस्थाओं में अन्य अभिलाषाओं से परे जिह्वा स्वाद की अभिलाषा विशेष होती है। यही अभिलाषा एवं परिवार की उपेक्षा 'बूढ़ी काकी' कहानी की प्रमुख पात्र बूढ़ी काकी को अपनी जठराग्नि शांत करने के लिए जूठे पत्तल से खाने तक को विवश कर देती है। सामाजिक मानसिकता काफी हद तक रूढ़ होती है, जिसमें सुधार की आवश्यकता है। लोग उचित व्यवस्था की ओर कम ध्यान देकर परंपरागत विचारों को ही अधिक प्रश्रय देते हैं और इसे अपने व्यवहार में शामिल कर लेते हैं। इसी मानसिकता

के बीच दुर्भावनाओं का बीजारोपण होता है, जो सामाजिक व्यवस्था को कलंकित करती हैं। प्रेमचंद द्वारा रचित 'बेटों वाली विधवा' शीर्षक कहानी इसका अच्छा उदाहरण है। जहाँ फूलमती नामक स्त्री पात्र को प्रेमचंद ने इन्हीं संकीर्ण सामाजिक मानसिकता का शिकार होते दर्शाया है। जिसमें वैधव्य को प्राप्त स्त्री को अस्तित्वहीन मानने की प्रथा प्रचलित है। ऐसी स्त्रियों को न सिर्फ परिवार के सदस्य, बल्कि सामाजिक लोग भी उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगते हैं। क्षण भर में उसके सारे अधिकार एवं प्रतिष्ठा छीन जाती हैं। पंच- परमेश्वर में हम देखते हैं कि जुम्मन शेख की खाला के अधिकारों का हनन होता है। शुरुआत से ही समाज में स्त्री को शक्तिहीन माना गया। एक तो स्त्री दूजा बुढ़ापा; इसी कारण से बूढ़ी खाला को भी अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना पड़ा। एक सौ एक वर्ष पूर्व लिखी कहानी पंच-परमेश्वर (1916) में खाला अपने हक के लिए आवाज उठाती है जो आज के संदर्भ में अत्यन्त प्रेरणादायी है। आधुनिकता के इस दौर में लोग उन मूल्यों की उपेक्षा करने से भी नहीं चूकते जिससे वे निर्मित होते हैं। भीष्म साहनी द्वारा रचित 'चीफ की दावत' कहानी भी उसी समाज, उन्हीं लोगों पर चोट करती है, जो अपनी स्वार्थपरता के लिए बुजुर्गों की अवहेलना करते हैं। वे उन्हें हीन एवं व्यर्थ समझते हैं। शामनाथ द्वारा पूछा जाना 'माँ का क्या होगा'? हमें विस्मित कर देता है। उषा प्रियंवदा की कहानी 'वापसी' के गजाधर बाबू पैंतीस साल की नौकरी के बाद रिटायर्ड होकर अपने घर वापस आते हैं। पहले जब वह घर आते थे तो काफी खुश रहते थे परंतु अपने घर में ही रिटायर्ड होने के उपरांत वह सम्मान और स्नेह नहीं मिलता तथा जिस जीवन की उन्होंने कल्पना की थी वह सब उन्हें यथार्थ रूप में मिथ्या-सी प्रतीत होती है। अंततः गजाधर बाबू दूसरी नौकरी ढूंढ़ कर घर से चले जाते हैं। एक वृद्ध पिता की मनोव्यथा का परिचय हमें इस कहानी में मिलता है। वृद्ध अपनी सारी क्षमता, सम्पूर्ण समर्पण परिवार और समाज को दे देता है फिर भी वह अकेला और उपेक्षित-सा रह जाता है। मन्नू भंडारी की 'अकेली' शीर्षक कहानी की सोमा बुआ की स्थिति भी समाज में वृद्ध की मार्मिक स्थिति का दर्शन कराती है। वृद्ध सोमा बुआ अपने परिवार के लिए ही नहीं बल्कि अपने पूरे समाज के लिए पूर्णरूपेण समर्पित रहती है परन्तु उसके समर्पण का प्रतिफल तो उसे नहीं ही मिलता वह सम्मान भी नहीं मिलता जिसकी वह हकदार है।

प्रेमचंद ने अपनी कहानियों–'बूढ़ी काकी', 'बेटों वाली विधवा', 'पंच-परमेश्वर' आदि में वृद्धों की मनोदशा को मनोविश्लेषणात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। प्रेमचंद ने वृद्धों की यथार्थ एवं मार्मिक स्थिति को दर्शाते हुए युवा पीढ़ी को आईना दिखाने का प्रयास किया है। उन्होंने उन सभी परिस्थितियों को हमारे समक्ष रखा है जो हमारे हृदय को अंतस्तल तक झकझोरने की काबिलियत रखती है। उन्होंने अपनी रचनाओं में वृद्ध एवं युवा पीढ़ी की सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों पहलुओं को दर्शाया है। एक ओर जहाँ उन्होंने दुर्बलताओं को दिखाया है, वहीं दूसरी ओर सुधार की संभावना को भी दर्शाया है।

इन कहानियों के अतिरिक्त प्रेमचंद ने अपनी अन्य कहानियों यथा 'ईदगाह', 'अलग्योझा', 'नमक का दारोगा' आदि में भी वृद्धों के विभिन्न स्वरूपों पर प्रकाश डाला है। प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में बड़ी ही सूक्ष्मता से वृद्ध-जनों के उपदेशात्मक स्वरूप एवं अनुभव पर आधारित व्यवहारिक पक्ष को रखा है।

ये कहानियाँ आज की युवा पीढ़ी को जाने-अनजाने अपने कर्त्तव्य से च्युत होने की स्थिति से ही अवगत नहीं करातीं, वह हमारी अंतरात्मा को झकझोरते हुए यह एहसास कराती है कि बुजुर्ग सदैव हमारे लिए ही सोचते हैं और हम अज्ञानतावश एवं स्वार्थवश उनकी अवहेलना करते हैं।

जिस तरह नदियाँ पर्वतों से निकलते समय चंचल, ढलानों पर गिरते समय उन्मादी एवं समतल पर आते-आते मंद पड़ जाती है, उसी तरह जीवन की अवस्थाएँ भी परिवर्तित होती हैं। बाल्यावस्था की चंचलता युवावस्था के जोश में परिणत हो जाती है एवं बीतते समय के साथ उसमें दुर्बलता आ जाती है। जीवन भर के संघर्षों एवं कष्टों के बाद वृद्ध शारीरिक एवं मानसिक रूप से दुर्बल हो जाते हैं और वे अपने बच्चों के आश्रय के आकांक्षी बन जाते हैं लेकिन जब यह आश्रय उनसे छीनता है तब उनके हृदय की बेबसी, उनकी आह बन जाती है। प्रेमचंद ने वृद्धावस्था को बाल्यावस्था का पुनरागमन माना है। जिस प्रकार बालक सामाजिक चिन्ताओं से मुक्त भोजन का अभिलाषी होता है, उसी प्रकार वृद्धों में भी अमूमन सभी अभिलाषाओं से परे जिह्वा स्वाद की अभिलाषा विशेष हो जाती है। इसकी पूर्त्ति न होने पर उनकी दुर्बलता रोने-कुढ़ने तक को विवश करती है।

'बूढ़ी-काकी' में प्रेमचंद ने इसका बड़ा ही हृदयस्पर्शी चित्रण किया है।

जिस तरह डोर से कटी पतंग सहारा ढूँढ़ती है, उसी तरह वृद्ध भी अपने आप में टूटकर सहारे के आकांक्षी हो जाते हैं और जो उन्हें सहारा देता है, उस पर अपना सर्वस्व लुटाकर उसकी अधीनता इस आशा से स्वीकार लेते हैं कि वह भी उनके प्रति उसी तरह आभारी बना रहेगा। लेकिन, संपत्ति-लोभ मनुष्य को संकीर्ण एवं स्वार्थी बना देता है। इसमें मन की चंचलता, विवेक पर हावी हो जाती है और मनुष्य उचित एवं अनुचित में फर्क नहीं कर पाता है। जहाँ एक ओर बूढ़ी काकी अपनी संपत्ति अपने भतीजे बुद्धिराम को दे देती है, वहीं दूसरी ओर खाला भी अपनी संपत्ति जुम्मन शेख को वसीयत कर देती है। परिणामत: दोनों भर-पेट भोजन के लिए तरस जाती हैं। यह अमानवीय व्यवहार युवा पीढ़ी की संपत्ति-लोलुपता का ही परिणाम है जिसमें वे असंवेदनशील हो जाते हैं और उसी थाली में छेद करने को उतारू हो जाते हैं, जिसमें वे भोजन करते हैं। अभी हाल ही की घटना है–विजयपत सिंघानिया जो करोड़ों की संपत्ति के मालिक होते हुए भी अपने ही बेटे के कारण दर-दर की ठोकर खाने को विवश हैं। ओह! कहाँ जा रही है यह दुनियाँ!! दर्द होता है युवाओं की इस सोच और व्यवहार पर!!! प्रेमचंद ने भी दिखाया है कैसे युवाओं का विवेक खो जाता है और उनका विवेकहीन मस्तिष्क कड़वे एवं अमर्यादित शब्दों के प्रयोग को नहीं रोक पाता है। **"बुढ़िया न जाने कब तक जिएगी। दो-तीन बीघे ऊसर क्या दे दिया, मानो मोल ले लिया है! बघारी दाल के बिना रोटियां नहीं उतरतीं! जितना रुपया इस पेट में झोंक चुके, उतने से तो अब तक गांव मोल ले लेते"** (प्रेमचंद, **मानसरोवर**, भाग-7, 98)।

जीवन भर की व्यस्तता बुढ़ापा में आराम खोजती है। वह शांति चाहती है। उसके जीवन में अपने जीवन के लिए एक ही अभिलाषा शेष रह जाती है कि उसे सम्मान और समय पर भोजन मिल सके। जिसके लिए सारे कष्टों का बोझ उठाया हो उससे इतनी-सी कामना रखना स्वाभाविक भी है। किन्तु युवा उन सारे मूल्यों को क्षण भर में भूल जाते हैं, जिसकी वजह से आज वे सम्मान एवं सुख की जिन्दगी जी रहे होते हैं। वे भूल जाते हैं कि इन्होंने ही हमारे लड़खड़ाते कदमों को सहारा दिया था। जिसने हमारे आंसू पलकों से गिरने न दिए आज वे ही हमारे कारण पूरे दिन आंसू बहा रहे हैं। यहाँ यह प्रश्न विचारणीय हो जाता है कि क्या हम ऊपर उठ सके हैं? या फिर हमारी अमानवीयता हमें और नीचे ले गयी है!

आधुनिक समाज वैश्वीकरण, औद्योगीकरण और पाश्चात्य सभ्यता की ओर जिस प्रकार तेजी से बढ़ रहा है उसी प्रकार वह अपने पुराने मूल्यों की आहुति दे रहा है। समाज में रहने वाले लोगों में कलुषता आ गई है। आज माँ-बाप, भाई-बहन, चाचा-चाची, दादा-दादी जैसे रिश्तों में कड़वाहट आ रही है। बच्चे किशोरावस्था आते-आते परिवार के बंधन से मुक्त हो अपनी अलग दुनिया बनाने लगते हैं। परन्तु आज समझना होगा कि–**"पारंपरिक समाजों में जहाँ परिवार बड़ा होता है। बच्चों और उनकी माताओं की देखभाल के लिए दादा-दादी, चाचा-चाची, नाना-नानी आदि का एक बड़ा समूह होता है। इसलिए परिवार का बड़ा होना कोई समस्या नहीं पैदा करता"** (सिन्हा, 2007:143)। बुढ़ापा भी जीवन का काफी सुखदायी क्षण होता है। जब मनुष्य अपनी सारी जिन्दगी जी चुका होता है, अपने जीवन में काफी मेहनत करने के बाद उसे एक संतुष्टिजनक मुकाम मिल जाता है तब वह अपनी बची हुई जिन्दगी को आराम से गुजारने को इच्छुक होता है। इस अवस्था में वे अपनी आने वाली पीढ़ी को अपने सारे उत्तरदायित्व सौप देने को तत्पर रहते हैं! वृद्ध हमारी धरोहर हैं, जो संस्कार हमें किताबों के अध्ययन से नहीं मिलता वह संस्कार हमें अपने बड़े-बुजुर्गों से मिलता है। अत: वृद्ध हमारी आवश्यकता भी है। जिस देश को याद करते ही वहाँ की संस्कृति और संस्कार का ध्यान हमारे मनोमस्तिष्क में छा जाता था आज उसी देश में वृद्धाश्रम का खुलना हमारे देश को अवनति की ओर जाने को अग्रसर करती दिख रही है। यह विडंबना नहीं तो और क्या है जिन माता-पिता ने अपने बच्चों को जन्म दिया उनका पालन-पोषण किया आज जब वे ही बच्चे बड़े हो जाते हैं तो उन्हें अपने बुजुर्ग माता-पिता भार लगने लगते हैं। जब हम इस समस्या की तह में जाते हैं तो हमें पता चलता है कि आज मनुष्य की सोच काफी विकृत हो गई है। आज वैचारिक पतन हो गया है, बच्चे अपने माता-पिता से अलग हो जाते हैं उस समय जब उन्हें अपने बच्चों की सबसे अधिक आवश्यकता होती है। उम्र के इस पड़ाव में अपने ही बच्चों की अवहेलना असह्य हो जाती है–परिणाम होता है; कई वृद्ध आत्महत्या तक के लिए व्याकुल हो जाते हैं!!

इन सबके पीछे कहीं-न-कहीं आज की वर्तमान औद्योगिक व्यवस्था भी जिम्मेदार है–"वर्तमान औद्योगिक व्यवस्था यौवन और बचपन पर ही अपनी डरावनी छाया नहीं डालती। इससे जीवन का दूसरा छोर बुढ़ापा भी त्रासद बन जाता है। व्यावसायिक मूल्यों के सभी सामाजिक संबंधों पर हावी हो जाने से समाज और परिवार में वृद्ध व्यक्तियों का भी अवमूल्यन हो जाता है। पारंपरिक समाजों में महत्त्वपूर्ण मामलों में बड़े-बूढ़ों की राय का वजन सबसे ज्यादा होता था। अब चूँकि जीवन से संबंधित सभी विषयों में निर्णायक भूमिका प्रतिष्ठानों की होती है, वृद्ध लोग जो प्रतिष्ठानों से बाहर होते हैं, इन निर्णयों में कोई भूमिका नहीं अदा करते। अब वे न धन अर्जित करने में कोई भूमिका निभाते हैं और न समाज को दिशा देने में। इस तरह वे उच्छिष्ट वस्तु बन जाते हैं। घर-परिवार और समाज से बहिष्कृत ये बूढ़े लोग अपमान और निराशा की जिन्दगी बिताते हैं। अपने परिवारों से कटे वृद्धों का जीवन प्रायः इतना अर्थहीन और असुरक्षित हो जाता है कि वृद्धों को कष्टहीन मौत (यूथेनेसिया) प्रदान करने के धंधे को मान्यता प्रदान करने की माँग विकसित औद्योगिक समाजों में चारों ओर उठने लगी है।" (सिन्हा, 2007:144-145) परंतु हमें स्मरण रखना चाहिए कि उनके अनुभव हमारे लिए कितने सहायक है। धर्मवीर भारती के शब्दों में–"मैं रथ का टूटा हुआ पहिया हूँ / लेकिन मुझे फेंको मत/ इतिहासों की सामूहिक गति/ सहसा झूठी पड़ जाने पर/ क्या जाने/ सच्चाई टूटे हुए पहियों का आश्रय ले" (भारती, 74)।

उद्देश्य :

आज का समाज जाने-अनजाने विनाश की ओर अग्रसर होता जा रहा है। इसका मूल कारण कहीं न कहीं नैतिक पतन है, मूल्यों की अवहेलना है। वह मूल्य, वह नैतिकता जिसका पाठ हमारे बड़े बुजुर्ग पढ़ाते थे, आज हम उनकी अवमानना करते हैं, अवहेलना करते हैं–जो उचित नहीं है! हमें समझने की आवश्यकता है उनकी अहमियत को, यही हमारे शोध का उद्देश्य है।

इस परियोजना-कार्य के माध्यम से हमारा यह प्रयास है कि दिशाहीन होती जा रही आज की युवा पीढ़ी अपने बड़े-बुजुर्गों का सम्मान करें और उनके द्वारा दिया गया अनुभव से संचित ज्ञान को पाकर अपने जीवन को सरल ही नहीं सार्थक भी बना सकें।

शोध-प्रविधि :

इस परियोजना के लिए हमने शोध प्रविधि की द्वितीयक पद्धति का प्रयोग किया है। तथ्यों के संग्रह के लिए हमने अध्येय रचनाओं पर किये गये पूर्व शोध ग्रंथों से संबंधित पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं एवं मीडिया की मदद ली है।

निष्कर्ष :

आज के इस भौतिकतावादी युग में बुजुर्गों की जो अवहेलना हो रही है, वह भावी पीढ़ी के लिए पतन का मार्ग प्रशस्त कर रही है। आज संस्कारों एवं मूल्यों में जो गिरावट देखने को मिल रही है; वह युवा पीढ़ी की उस अंधमूढ़ता का प्रमाण है जिसमें वे स्वार्थी होकर अपनी ही जिंदगी में मस्त रहते हैं। उन्हें कभी यह ख्याल नहीं आता कि इस व्यस्तता में कोई, जो सबसे अहम है, पीछे छूटता चला जा रहा है। यहाँ कई प्रश्न युवा पीढ़ी के समक्ष उठ खड़े होते हैं। जो आँखें सदैव उन्हें देखकर प्रसन्न होती हैं उन्हीं आँखों को नजरअन्दाज करने का साहस वे कहाँ से पा लेते हैं? जिन हाथों ने कल उन्हें सहारा दिया, आज वे उन्हें सहारा देने के लिए अपने हाथ क्यों नहीं बढ़ा पाते? जो माता-पिता बिना कुछ बोले ही जरूरतों को पूरा कर देते थे, आज उन्हीं माता-पिता की भावनाओं की अनदेखी कर ये युवा पीढ़ी क्या साबित करना चाहती है? ये सभी प्रश्न युवा पीढ़ी के व्यक्तित्व पर लगाए गए प्रश्नचिन्ह हैं, जिनके मूल में उनकी अवमूलित प्रवृत्ति है।

अतः आज जरूरत है–युवा पीढ़ी को अपनी संकीर्णता की परिधि से बाहर आने की और वृक्ष के उस जड़ को सहारा देने की जिससे वे निर्मित हैं। आज की युवा पीढ़ी को बुजुर्गों की मनोभावनाओं को समझना चाहिए। उनके पसंद-नापसंद का ख्याल रखना चाहिए। उन्हें तुच्छ एवं व्यर्थ नहीं समझना चाहिए क्योंकि बुजुर्ग अपने जीवन के अंतिम क्षण तक को अपने बच्चों पर समर्पित करते हैं। युवा पीढ़ी अपनी स्वार्थपरता के लिए बेहिचक उनसे मदद ले लेती है लेकिन जब बात उनकी जरूरतों की होती है तो युवा पीछे हट जाते हैं जबकि ऐसा नहीं होना चाहिए। उन्हें भी वो प्यार, सम्मान एवं अधिकार देने चाहिए जिसके वे हकदार हैं। जिस प्रकार बाल्यावस्था में बच्चे संवेदनशील होते हैं, उसी प्रकार प्रौढ़ावस्था में बुजुर्ग भी शारीरिक दुर्बलता के साथ-साथ मानसिक रूप से दुर्बल हो जाते हैं। ऐसे में

अपनों की उपेक्षा उन्हें असह्य हो जाती है। प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में इसका चित्रण बड़े ही मार्मिक ढंग से किया है। प्रेमचंद ने अहसास दिलाया है कि बुजुर्ग अपने बच्चों से कई उम्मीदें रखते हैं। अतः आज की युवा पीढ़ी को उन उम्मीदों पर खरा उतरने का प्रयास करना चाहिए न कि उसे तोड़ने का, क्योंकि इससे किसी की जिन्दगी जुड़ी रहती है।

माता-पिता का ऋण चुकाया तो नहीं जा सकता किन्तु उनकी सेवा-शुश्रूषा द्वारा उस ऋण को कुछ कम जरूर किया जा सकता है। 'मनुस्मृति' में भी इस बात का प्रमाण मिलता है कि बुजुर्गों का नित्य आशीर्वाद लेने एवं उनकी सेवा करने से आयु, विद्या, यश और बल इन चार गुणों में वृद्धि होती है।

"अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम्॥"

– (मनुस्मृति, 2/121)

बुजुर्गों का आशीर्वाद आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है। अतः आज की युवा पीढ़ी को उनका सम्मान करना चाहिए न कि सिर्फ इस्तेमाल। साथ ही, युवा पीढ़ी को यह बात सदैव याद रखनी चाहिए कि वे भारतवर्ष के उसी गौरव कुल के वंशज हैं, जिसमें बुजुर्गों का स्थान सर्वोपरि एवं आदरणीय था।

प्रेमचंद एवं अध्येय कथाकार ने अपनी कहानियों के माध्यम से युवा पीढ़ी का ध्यान बुजुर्गों की उन सभी समस्याओं की ओर आकृष्ट कराना चाहा है, जिस ओर वे अपनी व्यस्तता, स्वार्थपरता एवं कर्त्तव्यहीनता के कारण नहीं दे पाते। युवा पीढ़ी ही समाज के सुधारक एवं भविष्य के निर्माता होते हैं। ऐसे में यदि वे विवेकशून्य हो जाए तो सामाजिक पतन स्वाभाविक है। अतः आज की युवा पीढ़ी को अपने अंदर उन आदर्शों को प्रश्रय देना चाहिए, जिससे समाज में वृद्धाश्रम खोलने की जरूरत न पड़े। सभी बुजुर्ग सम्मान एवं अधिकार के साथ अपने घरों में रह सकें। इस तरह एक सुसंगठित परिवार का निर्माण हो सकेगा। आज इस बात की आवश्यकता है कि जिस प्रकार माँ-बाप एक बच्चे को सुसंस्कारित करते हैं ठीक उसी प्रकार आधुनिक युवा पीढ़ी उन्हीं संस्कारों की अंगुली थामकर बुजुर्गों को लेकर आधुनिकता के नूतन सोपानों की ओर अग्रसर हों!

संदर्भ सूची :

पाठक, श्रीगणेशदत्त. (2002). मनुस्मृतिः प्रकाश-भाषा-टीका-संहिता. वाराणसी : श्री ठाकुर प्रसाद पुस्तक भंडार. पृ० सं०-68

प्रेमचंद. (2011). मानसरोवर भाग-1. पटना : अनुपम प्रकाशन।

प्रेमचंद. (2011). मानसरोवर भाग-7. पटना : अनुपम प्रकाशन।

प्रेमचंद. (2011). मानसरोवर भाग-8. पटना : अनुपम प्रकाशन।

प्रेमचंद. (2005). कुछ विचार. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन।

प्रियंवदा, उषा. (2008). वापसी. कथा-सरित् डॉ० लक्ष्मण प्रसाद सिन्हा. इलाहाबादः जयभारती प्रकाशन. पृष्ठ सं०-107-112

भारती, धर्मवीर. (2014). टूटा पहिया, हिन्दी गद्य-पद्य संग्रह भाग-2, दिनेश प्रसाद सिंह. पटनाः मोतीलाल बनारसीदास. पृष्ठ सं०-74

साहनी, भीष्म. (2003). चीफ की दावत. प्रतिनिधि कहानियाँ. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।

सिन्हा, सच्चिदानंद. (2007). भूमण्डलीकरण की चुनौतियाँ. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन।